भारत की गरीबी के लिए कौन जिम्मेदार है? संस्कृति या राजनीतिक आर्थिक व्यवस्था? जो भारत की गरीबी को खत्म करना चाहते हैं, उन्हें इस सवाल का जवाब देने की जरूरत है। उन्हें तय करना होगा कि वे अपनी ऊर्जा को कहां केंद्रित करें। कई लोगों का मानना है कि चूंकि रामराज्य भारत में था, इसलिए भारत की सरकार से यह भूमिका निभाने की उम्मीद की जाती है। भारतीय संस्कृति का वैराग्य, भौतिकवाद का विरोध व नियतिवाद और माई -बाप सरकार की धारणा भौतिक संपन्नता के लिए कम ही प्रोत्साहन देती है।

गरीबी के लिए के लिए व्यवस्था दोषी या संस्कृति?

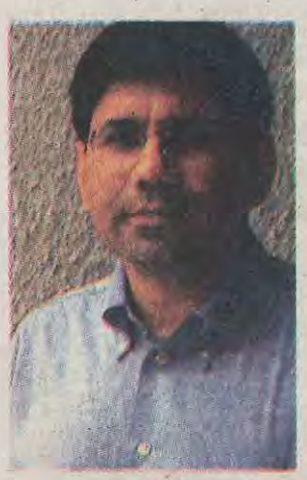

पार्थ जे शाह
(प्रख्यात अर्थशास्त्री और थिंक टैंक सेंटर फार सिविल सोसायटी के अध्यक्ष)

बहुत बड़ा सवाल है कि क्या भारत के गरीब कभी समृद्ध होंगे? प्रमुख धर्म और संस्कृति पर गौर करने पर बहुत निराशावादी चित्र उभर कर आता है। जो लोग आमतौर पर आधुनिक समाजों में धर्म और संस्कृति के प्रभाव को महत्वपूर्ण मानते हैं, वे कहते हैं कि भारत की गरीबी राजनीतिक –आर्थिक व्यवस्था की उपज है। अशिक्षित लोगों के प्रतिनिधिक लोकतंत्र ने राजनीतिक व्यवस्था के संचालकों को अपने लिए धन इकट्ठा करने की सुभीता दी। नेहरूवादी समाजवाद, जिसे आमतौर पर लाइसेंस कोटा परमिट राज कहा जाता है, ने निजी पहल और उद्यमशीलता के लिए ज्यादा गुंजाइश ही नहीं छोड़ी थी। इसका नतीजा निकला– हिंदू विकास दर। इसके बारे में दलील दी जाती थी कि इस तरह की व्यवस्था में किसी भीं संस्कृति में यही नतीजा निकलता।

भारत की गरीबी के लिए कोन जिम्मेदार है? संस्कृति या राजनीतिक आर्थिक व्यवस्था। (अपने व्यापक अर्थ में धर्म संस्कृति को परिभाषित करता है इसलिए दोनों शब्दों को समानार्थक माना जा सकता है।) जो भारत की गरीबी को खत्म करना चाहते हैं, उन्हें जवाब देने की जरूरत है। उन्हें तय करना होगा कि वे अपनी ऊर्जा को कहां केंद्रित करें। पहले संस्कृति, अर्थशास्त्र और राजनीति पर कुछ बातें।

भारत की संस्कृति

देश के सबसे प्रमुख हिंदूधर्म में जीवन का उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना है यानी जन्म मरण के चक्र से मुक्ति पाना। उस उद्देश्य को पाने का एक तरीका है कि भौतिक विश्व का त्याग करना। इसके लिए आदमी जंगल में चला जाता है प्रार्थना करते हुए जीवन बीता देता है। प्रार्थना कई तरह से हो सकती है। इसमें सबसे आम है अकेले में ध्यान करना या निरंतर भजन करना।

चूंकि ज्यादातर मनुष्यों के लिए भौतिक विश्व का त्याग करना मुश्किल होता है, इसलिए दूसरी राह सुझाई गई है कि संसार में रहें मगर कड़ाई से निर्देशों का पालन करें। इसके लिए मुष्य के जीवनकाल को चार कालखंड़ों (आमतौर पर अवस्था के आधार पर) में बांटा गया है। उन उद्देश्यों और नियमों के पालन को धर्म कहा जाता है। यह स्पष्ट रूप से असंभव है कि जीवन की हर स्थिति के लिए नियम बनाए जाएं। इसलिए महाभारत और रामायण जैसे महाकाव्यों के पात्रों को उदाहरण के तौर पर प्रस्तुत किया जाता हैं।

आमतौर पर कहा जाता है कि भौतिक संपत्ति को जुटाना धर्म नहीं है। आदमी को भौतिक संपत्ति का संचय करना चाहिए और मानवीय रिश्ते भी बनाने चाहिए। फिर भी जितने कम हों, उतना अच्छा है। ज्यादा से ज्यादा समय उपासना में लगाना चाहिए। आखिर में इस भौतिक जगत में अपने धर्म का पालन करना यानी उपासना करना ही मोक्ष का रास्ता है। भारतीय संस्कृति में भौतिकतावाद के विरोध और संन्यास को न केवल पसंद किया गया है, वरन उसे महिमा मंडित भी किया गया है।

कृष्ण द्वारा कही गीता दूसरा ऐसा धर्मग्रंथ है, जिसे व्यापकरूप से पढ़ा जाता है और उसका अनुकरण किया जाता है। गीता के दो प्रमुख विचार हैं निष्काम भाव और कर्म । मनुष्य को जीवन में निष्काम भाव को हासिल करने के लिए कोशिश करनी चाहिए । हर चीज के प्रति वैराग्य मन की आदर्श स्थिति है। यहां तक यदि कोई संसार में रहता है तब भी उसे उसकी किसी चीज के प्रति मोह नहीं होना चाहिए–न भौतिक चीजों के प्रति न ही अन्य मनुष्यों के प्रति । यह अच्छी बात है यदि किसी के पास भौतिक सुविधाएं हो ।और वह परिवार और मित्रों से प्रेम करे। लेकिन नहीं हो तब भी चलेगा। हरेक को सभी चीजों और सभी प्राणियों के प्रति उदासीन होना चाहिए।

कर्म की अवधारणा भी निष्काम भाव के साथ जुड़ी है। इसके मुताबिक आप जो भी हैं और जैसे भी हैं पिछले जन्मों और अतीत के कर्मों का नतीजा है। आपका वर्तमान न केवल उचित है वरन मुश्किल से ही बदला जा सकता है। कर्म का सिद्धांत अप्रत्यक्ष रूप से भारत की जाति व्यवस्था का समर्थन करता है।(जाति व्यवस्था के दो महत्वपूर्ण आयाम हैं – इसका व्यवसाय के जुड़ाव और छोटी जातियों के लोगों को अस्पृश्य मानना। दूसरा आयाम अब खत्म हो रहा है, लेकिन पहला अब भी बरकरार है।)

आप किस जाति में जन्म लेते हैं यह आपके कर्म से तय होता है। आपसे यह उम्मीद की जाती है कि जाति को स्वीकार करें और उससे जुड़ी भूमिका को स्वीकार करें। ऐसा करना अपने धर्म को निभाना है। यह स्पष्ट है कि नियतिवाद लोगों के दिमाग में पैठा हुआ है।

रामायण महाकाव्य में भगवान राम के राज्य का वर्णन है। उनके राज्य में संपन्नता थी,आनंद था और संतोष था। वह आदर्श शासक थे और उनका राज्य रामराज्य कहलाता था। (हिंदी मूलतत्ववादी राजनीतिक दल सत्ता में आने पर उसको ही लाने की बात करते हैं) राम के समय से ही लोग दूसरे रामराज्य की राह देख रहे हैं। उसे अभी आना है, लेकिन यह बात भारतीय मानस में पैठी हुई है कि अचछा शासक ही ही सुख–समृद्धि ला सकता है। आधुनिक समय में सरकार से यह उम्मीद की जाती है कि वह उदार शासक हो। अपने उद्धार के लिए सरकार पर उनकी इस निर्भरता को ही माई–बाप सरकार कहा जाता है। जब तक सरकार कुछ नहीं करती या उन्हें कुछ करने के लिए मजबूर नहीं करती, तब तक लोग लोग अपने को असहाय समझते हैं। कई लोगों का यह मानना है कि इस माई–बाप सरकार में विश्वास के कारण ही लोगों में पहल और उद्यमशीलता का अभाव है। चूंकि रामराज्य भारत में था, इसलिए भारत की सरकार से यह भूमिका निभाने की उम्मीद की जाती है। भारत से या राम की भूमि से आए आव्रजक इसलिए ज्यादा उद्यमशील और आत्मनिर्भर होते हैं।

भारतीय संस्कृति का वैराग्य,भौतिकवाद का विरोध और नियतिवाद और माई-बाप सरकार की धारणा भौतिक संपन्नता के लिए कम ही प्रोत्साहन देती है। वास्तव में वह उसे हतोत्साहित करती है। इसलिए भारतीयों को संतोषी कहा जाता है न कि ज्यादा से ज्यादा चाहनेवाला। इसलिए वे आर्थिक पहल और तर्क से मुक्त हैं। लेकिन क्या आर्थिक तर्क वैश्विक नहीं है ?

भारत की राजनीतिक आर्थिक व्यवस्था

जो लोग आर्थिक तर्कशास्त्र और प्रोत्साहनों पर विश्वास करते हैं, उनका मानना है कि भारत की गरीबी राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था के कारण है। ब्रिटेन के उपनिवेशों में जिन देशों ने इस सदी में आजादी हासिल की। उनमें से केवल भारत ही ऐसा देश है, जिसमें लगातार लोकतंत्र रहा है। मगर भारत के भी लोकतंत्र के अपने विरोधाभास रहे हैं। लोकतंत्र सबसे कम बलप्रयोग करनेवाली व्यवस्था है, लेकिन इसकी कार्यप्रणाली इसकी बलप्रयोग की शक्ति को बढा देती है। लोकतंत्र के गतिशास्त्र और विकास का नेहरूवादी माडल अपनाने के कारण भारतीय जीवन का कोई क्षेत्र इतना सुरक्षित नहीं रहा, जहां सरकार का हस्तक्षेप न हो। सरकार ने निजी संपत्ति को समाप्त नहीं किया, मगर लाइसेंस-कोटा-परमिट राज के जरिए उत्पादन, वितरण और उपभोग के हर पहलू पर शिकंजा कसा। इस व्यवस्था ने राजनेताओं और नौकरशाहों को असीमित अधिकार दिए। नेताओं ने विकास करने की आड़ में देश को खूब लूटा। भारत में अंग्रेजो का राज तो खत्म हो गया लेकिन उसकी जगह नेता–बाबू राज। (राजनीतिज्ञ-नौकरशाह राज) आ गया।

यहां नेता-बाबू राज का उदाहरण पेश है। कारों को विलासिता की वस्तु घोषित किया गया था और केवल दो कंपनियों को उसका उत्पादन करने की इजाजत थी, वह भी उतनी ही संख्या में जो सरकार ने तय की हों । वे वही एक माडल 40 साल तक बेचती रहीं और कोई भी तब तक उन्हें खरीद सकता था, जब तक उनका रंग सफेद हो। सरकार के नियंत्रणों का औचित्य हमेशा स्वयंसिद्ध होता है। कार अभी तक विलासिता की वस्तु रहीं। भारतीय शासन की अजीबोगरीब नीति का एक और उदाहरण लीजिए, सरकार के विशेषज्ञों ने सड़कों के निर्माण और डिजाइनों का अध्ययन करने के लिए कई देशों का दौरा किया। इन देशों के मार्ग बनाने के आम तरीकों का अनुकरण करते हुए उनहोंने राजमार्गों के बीच में काफी चौड़ी जगह छोड़ना शुरू किया जहां घास ,हरी झाड़ियां और पेड़ लगाए गए। इससे अचानक राजमार्गों पर गंभीर किस्म का ट्रैफिक जाम होने लगा। राजमार्गों के बीच की चौड़ी क्यारियों को गायों ने खोज निकाला। ट्रैफिक को सैंकड़ों गायों के बीच अपनी राह बनानी पड़ती थी, क्योंकि भूखी गायें बीच की क्यारियों की ओर भागती थी। आखिर गायें और कहां जातीं। यह भारतीय विशेषताओं से युक्त समाजवादी आर्थिक नियोजन था।

मगर विदेशी मुद्रा भंडार के लगातार घटने और अर्थव्यवस्था के ढहने ने भारत को उदारवाद के रास्ते पर चलने के लिए मजबूर होना पड़ा। आटो के बाजार को खोला गया। पहले विदेशी कंपनियां अपने कारखाने नहीं डाल सकतीं थ थीं लेकिन भारतीय कंपनियों के साथ संयुक्त उद्यम चलाने की इजाजत मिली। भारत को विदेशी राज की स्मृतियां अब भी परेशान किए हुए थी। पहले भारत में विदेशी कंपनियों को संयुक्त उद्यमों में 25 फीसद हिस्सेदारी रखने की इजाजत दी गई । यह दलील दी गई कि नियंत्रण भारतीय कंपनी के हाथ में रहना चाहिए। फिर इस सीमा को 40 फीसद तक बढ़ाया गया। बाद में काफी खींचातानी के बाद इसे 49 फीसद तक बढ़ाया गया। कुछ समय तक ऐसा ही चलता रहा और इस तरह भारत की सार्वभौमता और आर्थिक विकास की में संतुलन कायम करने की कोशिश की गई और फिर भारत ने अपनी कथित सारभौमिता खो दी और सीमा 51 फीसद तक बढ़ा दी गई। फिर नए माडल लाए गए नए रंग भरे गए। विदेशी कंपनियों को आटो मार्केट में खुली छूट दे दी गई, जब तक वह संबंधित मंत्रालय से अनुमति लेने में कामयाब होती थी। मंत्रालय लगातार कंपनियों को याद दिलाते रहते थे कि उन्होंने तीव्र गति से निर्णय करने का वादा किया है। सभी निवेश संबधी निर्णय तेजी सेहोते थे। इस तरह नेता–बाबू राज ने ब्रिटिश राज की यादों को जिंदा रखा।

नेता–बाबू राज की इस मानसिकता को देकने के बाद भारत में गरीबी के लगातार बने रहने के मामले में किसी व्याख्या की जरूरत नहीं है। लेकिन फिर भी यह सवाल रह जाता है।

संस्कृति का प्रभाव होता है या व्यवस्था का यह तय करने के लिए किसी समाजशास्त्रीय, मनोविज्ञानीय, समाजशास्त्रीय या अर्थशास्त्रीय सिद्धांत को स्थापित कर पाना मुश्किल है। यह कह पाना मुश्किल है कि संस्कृति या व्यवस्था लोगों जिनमें शासक और शासित दोनों ही शामिल है की रोजमर्रा की गतिविधियों को किस हद तक प्रभावित करती है। संस्कृति और व्यवस्था दोनों ही गतिशील होते हैं। वे लगातार विकसित होते हैं,अंर्तक्रिया करते हैं । दोनों ही मानवीय कर्म की उपज हैं। व्यवस्था उन लोगों की संस्कृति से प्रभावित होती है, जो उसे बनाते हैं। लेकिन व्यवस्था भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है कि किस तरह की संस्कृति विकसित हो। निश्चित ही आसान उत्तर यह है – परस्पर निर्भरता। वे संयुक्त रूप से लोगों की भौतिक और आध्यात्मिक स्थिति को शासित करते हैं। जैसा कि अलफ्रेड मार्शल के अर्थशास्त्र में होता है कि मांग या सप्लाई अकेले ही कीमतें तय नहीं करते। वे एक ही कैंची के दो पातें हैं।

लेकिन अगर मुझे चुनना हो संस्कृति के बजाय व्यवस्था को चुनूंगा। मैं कोई सैद्धांतिक दलील पेश नहीं कर सकता। लेकिन मैं कुछ प्रमाणजन्य और विकासवादी दलीलें जरूर पेश कर सकता हूं। विश्व के सभी प्रमुख धर्मों में मरणोत्तर जीवन को लेकर चिंता और उसका लौकिक जीवन पर असर की अवधारण है। इसी तरह वैराग्य और भौतिकवाद के विरोध पर बल दिया गया है। न्यू टेस्टामेंट के 'सुई की आंख' याद कीजिए। किसी भी मुख्य धर्म ने लौकिक संपदा को मानव जीवन का उद्देश्य नहीं माना है। इसी तरह अपने धर्म और संस्कृति के प्रति उत्कट समर्पण भी समान है। मेफ्लावर में धार्मिक असंतुष्ट भरे हुए थे,यात्री कम्यून में रहते थे। बाद में भी लंबे समय तक अमेरिका की धरती पर कई समाजवादी प्रयोग किए गए। इनमें से कोई भी मुहिम अमेरिका को दुनिया का सबसे भौतिक रूप से समृद्ध समाज और भौतिकवाद और उपभोक्तावाद का सिरमौर बनने से नहीं रोक पाई। सौभाग्यवश शुरूआती समाजवादी चिंतन को खारिज कर दिया गया। अमेरिका ने व्यक्ति को अपना मकसद चुनने और उसे पाने की कोशिश करने की छूट दी। इस तरह प्रारंभिक धर्म के बावजूद अमेरिकी व्यवस्था सफल रही।

अमेरिका की इस गाथा को जानने के बाद भी हम क्यों यह उम्मीद करते हैं कि भौतिकवाद का विरोध किसी अन्य समाज को भौतिक समृद्धि पाने से रोकेगा जबकि वहां एक ऐसी व्यवस्था हो जो उन्हें अपने तरह से जीवन जीने की स्वतंत्रता देती हो। बावजूद इसके, इस सूचना युग में जिन प्रक्रियाओं को पूरी तरह पटरी पर लाने में कई शतक लग गए, वह महज कुछ दशकों में पूरी हो जाएंगी, इस बात में शक की काफी गुंजाइश है। यदि व्यवस्था सही हो तो कोई भी समाज लंबे समय तक भौतिक रूप से गरीब नहीं रह सकता।

यह उत्क्रांति केवल पश्चिम के ईसाई देशों में ही नहीं हुई है।थाईलैंड और इंडोनेशिया जैसे बौद्ध देशों में पिछले दशक में अपने उपभोग को नाटकीय तरीके से बढ़ाया है। पूर्वी एशिया का कंफ्यशियसवाद कोक और लेवीज का लुत्फ उठाने में बाधक नहीं बना। पूर्वी एशिया के देशों ने भौतिकवाद विरोध को छोड़ भौतिकवाद को अपनाने में की अद्भुत क्षमता दिखाई। फिर इस्लाम और हिंदू धर्म क्यों नहीं अपने को इसके मुताबिक नहीं ढालेंगे।

पश्चिम और पूर्व के हिस्सों के विकास ने यह स्पष्ट कर दिया है कि एक बार यदि आर्थिक ऊर्जा को बंधनमुक्त कर दिया जाता है तो धर्म या संस्कृति लंबे समय तक बाधा नहीं बन पाते। जैसे ही आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं को सुधारा जाता है तो भौतिक समृद्धि प्रवाहित होने लगती है। इस भौतिक समृद्धि का वास्तविक चरित्र और संरचना उनकी जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उनकी विशेषताओं पर निर्भर करती है। निश्चित ही हम भी केवल कोक और लेवीज को पसंद नहीं करते।

भौतिक समृद्धि का विरोध बुनियादी तौर पर ही मानवीय स्वभाव के विपरीत है। ऐसा लगता है कि हिंदू और मुस्लिम इसके अपवाद हैं। मगर उनका शरीर के प्रति उपेक्षाभाव स्पष्टरूप से इस बात का नतीजा है कि उन्होंने शरीर पर ध्यान देने के तरीके खोज नहीं पाए हैं। यदि उन्हें इसके बारे में बताया जाए और उत्पाद उपलब्ध कारण जाएं तो बाकी लोगों की तरह वे भी शरीर पर ध्यान देने लगेंगे। यह बात दिल्ली और ढाका के बुटीक और डिस्कोथेकों से स्पष्ट भी हो चुकी है। वास्तव में अगर देखा जाए तो भौतिक समृद्धि का धार्मिक विरोध केवल पाखंड और अपराध बोध को ही जन्म देता है। फिर कह सकते हैं कि उभरते वैश्विक शहर में यह खत्म हो जाएगा।

एक अर्थ में उत्क्रांति की प्रक्रिया पूर्णता की ओर बढ़ना है। यह एक अवसर है, अपनी एक भौतिक और आध्यात्मिक प्राणी के रूप में अपनी उच्चतम क्षमताओं को पूरा करने का । ज्यादातर मनुष्य पहले पहले अपने शरीर पर ध्यान देते हैं, बाद में अपने मन और आत्मा पर। शरीर को सक्षम बनाना मन और आत्मा के क्षेत्र में भी सहायक बनता है। इसके जरिए हम यह नहीं कह रहे हैं कि शरीर को सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए आर्थिक और नागरिक स्वतंत्रताओं की बलि चढ़ा दी जाए। ऐतिहासिक तथ्यों से स्पष्ट है कि भौतिक प्रगति को संभव बनाने के लिए स्वतंत्रता कानूनी रूप से ही नहीं, वरन वास्तविक तौर पर जरूरी है। इसके अलावा मन और आत्मा के लिए भी भौतिक चीजों की जरूरत होती है। आखिरकार उत्क्रांति की प्रक्रिया को आगे ले जाने के लिए संस्कृति और राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था दोनों में परिवर्तन करना होगा। संभवतः कंप्यूटर और कांपेक्ट डिस्क से पहले कास्मेटिक्स और स्टाकिंग्स को आयात के लिए खुला करने के पीछे कोई अर्थ है। वजह काफी हद तक स्पष्ट लगता है। भारतीय नेता और नौकरशाह सचमुच कुछ गंभीर करना चाहते हैं। यह भारतीय विशेषता से युक्त युकितवाद है।

-साभार आजादीमी

कहा जाता है कि भौतिक संपत्ति जुटाना धर्म नहीं है। आदमी को भौतिक संपत्ति का संचय करना चाहिए और मानवीय रिश्ते भी बनाने चाहिए, लेकिन जितने कम हों, उतना ही अच्छा है। ज्यादा से ज्यादा समय उपासना में लगाना चाहिए। आखिर में इस भौतिक जगत में धर्म का पालन करना यानी उपासना करना ही मोक्ष का रास्ता है। भारतीय संस्कृति में भौतिकतावाद के विरोध और संन्यास को न केवल पसंद किया गया है, वरन उसे महिमा मंडित भी किया गया है।

किस व्यवस्था की उपज गरीबी सबको जवाब की दरकार